International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-10, Issue-3 May-June-2023 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा और उसके सिद्धांत एक सकारात्मक दृष्टिकोण

नीरज कुमार [1*] डा०शैल ढाका[2]**
शोधार्थी [1*] शोध निर्देशिका[2**]
स्कूल ऑफ एजूकेशन [1,2], शोभित इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्जीनियरिंग एण्ड टैक्नोलॉजी
(डीम्ड—टू—बी यूनिवर्सिटी) एन.एच. 58, मोदीपुरम (मेरठ), इण्डिया।

शोध सारांश

शिक्षा उतनी ही पुरानी है जितनी स्वयं सभ्यता और यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक शैक्षिक प्रक्रिया, चाहे सचेत हो या अचेतन, के कुछ निश्चित लक्ष्य होते हैं। शैक्षिक परिदृश्य में लक्ष्य निर्दिष्ट करना हमेशा पेचीदा मामला रहा है, क्योंकि किसी भी शिक्षा या विशिष्ट शैक्षिक प्रणाली का दायरा सैद्धांतिक रूप से असंख्य है। अक्सर हम किसी विशेष शैक्षिक प्रणाली की प्रभावकारिता या अन्यथा का मूल्यांकन करने के लिए शिक्षा में कुछ आसानी से देखने योग्य और सत्यापन योग्य लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं। शिक्षकों के बीच यह भी एक सामान्य अवलोकन रहा है कि किसी विशेष शैक्षणिक व्यवस्था में कुछ पूर्वकल्पित लक्ष्य छूट गए हैं, जबकि अन्य समान रूप से स्वीकार्य लक्ष्य, हालांकि पहले पहचाने नहीं गए थे, प्राप्त कर लिए गए हैं। इंटीग्रल शिक्षा के संदर्भ में, ग्यारह विशिष्ट लक्ष्यों की पहचान की गई है। श्री अरविंद घोष और द डिवाइन मदर के दर्शन में सभी लक्ष्यों को मंजूरी मिली हुई है। महत्वपूर्ण रूप से, इस प्रकार पहचाने गए सभी ग्यारह लक्ष्यों का उपयोग एक अभिन्न शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रक्रिया को मान्य करने के लिए किया जा सकता है। दिलचस्प बात यह है कि सभी ग्यारह लक्ष्यों को द मदर एजुकेशन के लेखन से पहचाना जा सकता है क्योंकि वह कक्षाओं में श्री अरविंद घोष के दर्शन को आकार देने के उद्यम में सक्रिय रूप से शामिल थीं।

कुंजी शब्द— शिक्षा, सिद्धान्त एवं सकारात्मक दृष्टिकोण

प्रस्तावना—

समग्र शिक्षा को आम तौर पर शिक्षा की एक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो मानव अस्तित्व के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं को एक सुसंगत संपूर्णता में एकीकृत करती है। चूँकि श्री अरविंद घोष के दर्शन का आधार मानव जाति का आध्यात्मिक विकास है, इसलिए शिक्षा के लिए अरविंद घोष के दृष्टिकोण में वांछित लक्ष्यों की आसान प्राप्ति के लिए मार्गदर्शक के रूप में कुछ सिद्धांतों का पालन करना शामिल होगा। सिद्धांतों को निम्नानुसार समझाया जा सकता है।

पहला सिद्धांत — कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता

शिक्षा की प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए नलिनी कांता गुप्ता कहती हैं, 'सारा ज्ञान आपके भीतर है। जानकारी आपको बाहर से मिलती है, लेकिन उसकी समझ? यह भीतर से है। बाहर की जानकारी तुम्हें मृत पदार्थ देती है। जो इसमें जीवन डालता है, इसमें प्रकाश डालता है वह आपकी अपनी आंतरिक रोशनी है। सारी शिक्षा, सारी संस्कृति का अर्थ है इस आंतरिक प्रकाश को सामने लाना।' दरअसल **'शिक्षा'** शब्द का शाब्दिक अर्थ है, **'बाहर लाना।'** शिक्षा की प्रकृति पर यह तीक्ष्ण टिप्पणी हमें श्री अरविंद घोष के अनुसार शिक्षा के पहले महत्वपूर्ण सिद्धांत पर लाती है। वास्तव में, श्री अरविंद घोष ने अपने निबंध **'ऑन एजुकेशन, द ह्यूमन माइंड'** में कहा है

कि **'सच्चे शिक्षण का पहला सिद्धांत यह है कि कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता है।'** इस संदर्भ में, एक शिक्षक पारंपरिकता के अनुसार शिक्षक नहीं है शब्द का अर्थ, है कि वह एक सुविधा प्रदाता है। वह विद्यार्थी की अंतर्निहित क्षमताओं को ध्यान में रखकर उसके दिमाग के सुधार को सुविधाजनक बनाता है। वह ज्ञान को सीधे शिष्य तक नहीं पहुँचाता है, बल्कि शिष्य को केवल वह रास्ता दिखाता है जिससे वह अपने लिए ज्ञान प्राप्त कर सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि श्री अरविंद घोष के अनुसार, इस सिद्धांत को किशोरों सहित सभी आयु वर्ग के विद्यार्थियों पर समान वैधता के साथ लागू किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द इसी धारणा से सहमत हैं। वह कहते हैं, 'शिक्षा मनुष्य में पहले से ही मौजूद पूर्णता की अभिव्यक्ति है। ज्ञान मनुष्य में अंतर्निहित है, कोई ज्ञान बाहर से नहीं आता, यह सब अंदर है। हम जो कहते हैं कि एक आदमी जानता है, सख्त मनोवैज्ञानिक भाषा में, वही होना चाहिए जो वह अपनी आत्मा से पर्दा हटाकर **'खोज'** करता है, जो कि अनंत ज्ञान की खान है... 'बाहरी दुनिया केवल सुझाव है, अवसर है, जो आपको अपने मन का अध्ययन करने के लिए तैयार करता है।'

स्वामी विवेकानन्द की मनुष्य निर्माण शिक्षा—शिक्षा के प्रति एक नया दृष्टिकोण श्री अरविंद घोष सामाजिक विज्ञान अनुसंधान संस्थान (1996) दरअसल, शिक्षा पर एक महत्वपूर्ण लेख में कहा गया है, 'मनुष्य की शिक्षा जन्म से शुरू होनी चाहिए और जीवन भर जारी रहनी चाहिए।' इस संदर्भ में, श्री अरविंद घोष के अनुसार मानव मन की अवधारणा का विश्लेषण करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। द लाइफ डिवाइन में **'लाइफ'** अध्याय में, श्री अरबिंदो का कहना है कि मानव मन की उत्पत्ति दैवीय है। उनका तर्क है कि **'मन दिव्य चेतना की एक विशेष क्रिया है'** और वह मन 'एक रचनात्मक ब्रह्मांडीय ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है। इस अवधारणा को **'द कॉस्मिक इल्यूजन'** अध्याय में मन, स्वप्न और मतिभ्रम को विकसित किया गया है।

श्री अरविंद घोष कहते हैं— 'मानव के सभी विचार, मानव के सभी मानसिक अनुभव निरंतर पुष्टि और निषेध के बीच चलते हैं, उसके मन में विचार का कोई सत्य नहीं है, अनुभव का कोई परिणाम ऐसा नहीं है जिसकी पुष्टि न की जा सके, ऐसा कोई भी नहीं जिसे नकारा न जा सके।'

दूसरे शब्दों में, पुष्टि और निषेध की दो चरम अवस्थाओं के बीच मानव मन की निरंतर गति इसे मनुष्य की सबसे लचीली इकाई बनाती है। मानव मन के इस गुण के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों अर्थ हैं। सकारात्मक पक्ष में हमें मानव मस्तिष्क की अपनी क्षमताओं के विशाल क्षेत्रों का उपयोग करके सोचने, कल्पना करने और सृजन करने की क्षमता होने की पुष्टि मिलती है। साथ ही, मानव मस्तिष्क की यही प्रकृति उसे पर्याप्त अस्थिरता का शिकार बना देती है जिससे यह अनिवार्य हो जाता है कि मानव मस्तिष्क के उचित उपयोग के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में समग्र शिक्षा की एक निश्चित और महत्वपूर्ण भूमिका है।

श्री अरविंद घोष मानव मन को तीन व्यापक श्रेणियों में मानते हैं, पहला भौतिक मन है जो 'वास्तविक, भौतिक, उद्देश्य को मानता है और इसे तथ्य के रूप में स्वीकार करता है और इस तथ्य को प्रश्न से परे स्वयं—स्पष्ट सत्य के रूप में स्वीकार करता है, जो कुछ भी वास्तविक नहीं है, भौतिक नहीं है, वस्तुनिष्ठ नहीं

है उसे वह वास्तविक या अवास्तविक मानता है...' भौतिक मन के कार्य—ऐसे कार्य व्यक्ति के लिए किसी बाहरी चीज़ को समझने की इंद्रियों की क्षमता के इर्द—गिर्द घूमते हैं।

दूसरी श्रेणी **'प्राण मन'** है। यह मन **'इच्छा का एक साधन है'**— यह वास्तविक से संतुष्ट नहीं है, यह संभावनाओं का सौदागर है, इसमें नवीनता के लिए जुनून है और इच्छा की संतुष्टि के लिए, आनंद के लिए, आत्म—पुष्टि के लिए और अपनी शक्ति और लाभ के क्षेत्र की उन्नति के लिए अनुभव की सीमाओं का विस्तार करने की हमेशा कोशिश करता है। वह वास्तविकताओं की इच्छा करता है, उनका आनंद लेता है, उनके पास है, लेकिन वह अवास्तविक संभावनाओं की भी तलाश करता है, उन्हें साकार करने, उन्हें हासिल करने और उनका आनंद लेने के लिए भी उत्सुक रहता है। यह केवल भौतिक और वस्तुनिष्ठ से संतुष्ट नहीं है, बल्कि व्यक्तिपरक, कल्पनाशील, विशुद्ध भावनात्मक संतुष्टि और आनंद की तलाश करता है।

इस मन को भौतिक मन का विस्तार कहा जा सकता है और महत्वपूर्ण मन तभी विकसित हो सकता है जब मानव मन को भौतिक मन की संभावित अपूर्ण प्रकृति का एहसास हो। स्पष्ट रूप से, एक इंसान अस्तित्व के विशुद्ध भौतिक स्तर पर नहीं रहना चाहेगा क्योंकि ऐसा अस्तित्व उसे अस्तित्व की निचली श्रेणी, अर्थात् जानवरों की स्थिति के बराबर कर देगा। श्री अरविंद घोष की विस्तृत परिभाषा हमें स्पष्ट रूप से आश्वस्त करती है कि प्राणिक मन भौतिक मन का सुधार है, और निहितार्थ से, प्राणिक मन भौतिक मन के उचित उपयोग में मदद करता है ताकि भौतिक मन किसी व्यक्ति को काम करने में सक्षम बना सके। अस्तित्व के भौतिक स्तर में सुधार। मानव मन की तीसरी श्रेणी 'सोचने वाला दिमाग है जो हर चीज की जांच करता है, हर चीज पर सवाल उठाता है, पुष्टि करता है और उन्हें तोड़ता है, निश्चितता की प्रणाली बनाता है लेकिन अंत में उनमें से किसी को भी निश्चित नहीं मानता है, पुष्टि करता है और, इंद्रियों के प्रमाण पर सवाल उठाता है।' कारण के निष्कर्षों का अनुसरण करता है, लेकिन अलग या बिल्कुल विपरीत निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए उन्हें फिर से पूर्ववत कर देता है, और यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक जारी रहती है यदि अनंत काल तक नहीं। अपने आप पर छोड़ दिया जाए, तो सोचने वाला दिमाग अपने संचालन के क्षणभंगुर मापदंडों को देखते हुए सत्य के निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में विफल रहेगा। चूँकि सोचने वाला मन भौतिक मन और प्राणिक मन का उपयोग करता है, इसलिए इसकी प्रक्रियाएँ अस्थायी और अस्थायी प्रकृति की होती हैं। प्रभावी रूप से, एक सोचने वाला दिमाग एक सर्पिल के भीतर घूमने तक ही सीमित होगा जो उसे सामान्य के स्तर को पार करने की अनुमति नहीं देता है। इसी संदर्भ में समग्र शिक्षा के पहले सिद्धांत की भूमिका है। यह स्वीकार करते हुए कि अधिकांश मानव जाति ऊपर बताई गई तीन श्रेणियों में से एक या अधिक पर काम करती है क्योंकि वह जीवन के माध्यम से आगे बढ़ती है, अभिन्न शिक्षा के पहले सिद्धांत की अवधारणा, यानी, कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता है, महत्व रखती है। चूँकि एक छात्र में मन की सभी तीन श्रेणियों का एक साथ उपयोग करने की संभावित क्षमता होती है, इसलिए समग्र शिक्षा में एक शिक्षक के लिए विद्यार्थियों को तीन श्रेणियों की प्रकृति पर प्रकाश डालना अनिवार्य है ताकि छात्र तीन प्रकार की मानसिक क्षमताओं के उपयोग का एहसास कर सके। साथ ही, एक शिक्षक को विद्यार्थियों को यह सुझाव देना चाहिए कि तीन प्रकार के मन के संचालन की क्षणभंगुर प्रकृति को देखते हुए, एक या अधिक ऐसे मन प्रकारों के उपयोग के माध्यम से जो कुछ भी उभरता है वह

ज्ञान और त्रुटि की विकृतियों से ग्रस्त होता है, जब तक मन सत्य की प्रकृति को समझने और हर झूठी चीज़ को अस्वीकार करने की क्षमता विकसित नहीं कर लेता। सत्य या असत्य की अवधारणा नैतिकता की पारंपरिक धारणाओं के अधीन नहीं होगी जो कि ज्यादातर समय गंभीर और घोर अनिश्चितता के अधीन होती है, बल्कि एक अंतर्निहित अहसास के अधीन होती है जो स्वाभाविक रूप से विद्यार्थियों में विकसित होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, समग्र शिक्षा विद्यार्थी के दिमाग में किसी भी ऐसे घुसपैठ को वैध नहीं मानती जो उसकी प्रकृति से बाहर हो। यह जिस चीज़ पर जोर देता है वह मन की प्रकृति के परिवर्तन पर है ताकि यह उच्च विचारों और उदात्त विचार, कार्य और अनुभूति के सिद्धांतों का भंडार बन जाए।

दूसरा सिद्धांत— अपने विकास में मन से परामर्श लेना होगा।

श्री अरविंद घोष के अनुसार, शिक्षा का दूसरा सिद्धांत यह है कि **'मन को अपने विकास में परामर्श देना होगा।'** वह आगे कहते हैं, बच्चे को माता—पिता या शिक्षक द्वारा वांछित आकार में ढालने का विचार बर्बरतापूर्ण और अज्ञानतापूर्ण है। उसे ही अपने स्वभाव के अनुरूप विस्तार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। माता—पिता के लिए इससे बड़ी कोई गलती नहीं हो सकती कि वह पहले से ही यह व्यवस्था कर लें कि उनके बेटे में विशेष गुण, क्षमताएं, विचार, सद्गुण विकसित होंगे या वह पहले से तय कैरियर के लिए तैयार रहेगा। प्रकृति को अपने धर्म को त्यागने के लिए मजबूर करना उसे स्थायी नुकसान पहुंचाना है, उसके विकास को विकृत करना और उसकी पूर्णता को नष्ट करना है... हर किसी में कुछ न कुछ दिव्य, कुछ न कुछ उसका अपना, चाहे वह कितना ही छोटा क्षेत्र क्यों न हो, पूर्णता और ताकत का मौका होता है। भगवान उसे लेने या अस्वीकार करने की पेशकश करते हैं। कार्य इसे खोजना, विकसित करना और इसका उपयोग करना है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई आत्मा को अपने अंदर से वह चीज़ निकालने में मदद करना होना चाहिए जो सबसे अच्छा है और इसे एक महान उपयोग के लिए परिपूर्ण बनाना चाहिए। श्री अरविंद घोष द्वारा शिक्षा के दूसरे सिद्धांत की सशक्त प्रतिपादन मानव मन की अंतर्निहित क्षमताओं में उनके विश्वास का पर्याप्त प्रमाण है। दूसरे सिद्धांत का सार यह है कि बच्चे के स्वभाव और स्वधर्म को बच्चे के लिए किसी भी शिक्षा योजना का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। इस दावे के दो महत्वपूर्ण परिणाम हैं। पहला यह कि यह सिद्धांत शिक्षा को अधिक लचीला बनाता है ताकि यह हर बच्चे के अनुकूल हो सके, क्योंकि एक बच्चे की अंतर्निहित प्रकृति दूसरे से भिन्न होगी। इस सिद्धांत से जो दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा सामने आता है वह यह है कि यह सिद्धांत शिक्षा को मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ और टिकाऊ बनाता है। यद्यपि शैक्षिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्देशात्मक मनोविज्ञान में विकास करने से बहुत पहले श्री अरविंद घोष ने इस सिद्धांत के बारे में तर्क दिया था, बाद के शोधों ने श्री अरविंद घोष के इस तर्क की वैधता को उजागर किया है कि मनोवैज्ञानिक रूप से, प्रत्येक बच्चा एक आत्म—निहित मनोवैज्ञानिक इकाई है, जिसकी अपनी विशेष क्षमताएं, प्रवृत्तियां और आवश्यकताएं होती हैं। इसलिए, कोई भी शिक्षा प्रणाली जो इस पहलू की उपेक्षा करती है, उसका बच्चों के प्रति सीमित आकर्षण होना निश्चित है और प्रत्येक बच्चे के लिए समान रूप से काम नहीं कर सकता है।

इस संदर्भ में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए, शिक्षक का पहला कार्य उस बच्चे का निरीक्षण करना और उसके स्वभाव या अंतर्निहित प्रकृति का आकलन करना होगा, तभी वह बच्चे को शिक्षित

करने की दिशा में अपने प्रयासों को व्यवस्थित करने में सक्षम होगा। श्रद्धालु रानाडे ने अपने युग प्रवर्तक कार्य **'इंट्रोडक्शन टू इंटीग्रल एजुकेशन— एन इंस्पिरेशनल गाइड'** में तीन प्रकार के मानव मन की पारंपरिक भारतीय व्याख्या का सहारा लेते हुए बच्चों की प्रकृति का विश्लेषण किया है। मानव मन को तीन गुणों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् तमस, रजस और सत्व। वे क्रमशः जड़ता, गतिविधि और संतुलन की विधा का प्रतिनिधित्व करते हैं। आम तौर पर, मानव मस्तिष्क में ये तीनों मिश्रित दिखाई देते हैं, लेकिन बारीकी से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि सभी गतिविधियों में एक की ही प्रधानता होती है। आम तौर पर यह पाया जाता है कि तमस या जड़ता भौतिक शरीर पर हावी होती है, रजस महत्वपूर्ण गतिविधियों पर हावी होती है, और, सत्त्व, या संतुलन, मन में प्रबल होता है। बच्चों में अधिकांश व्यक्तित्व इन तीन गुणों का मिश्रण होता है, लेकिन यह समय—समय पर बच्चों में बदलता रहता है।

रानाडे स्पष्ट करते हैं, '...सात्विक स्वभाव सद्भाव, संतुलन, समझ और यहां तक कि समझौता चाहता है। अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति में यह सत्य और प्रकाश का साधक है। राजसिक स्वभाव गतिशील, सक्रिय, स्व—प्रेरित, इच्छा—प्रेरित, यहां तक कि बेचैन और अराजक होता है। अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति में यह एक गतिशील आत्म—बोध चाहता है। तामसिक स्वभाव आराम, निष्क्रियता, यहां तक कि नीरसता, जड़ता और अज्ञानता की ओर प्रवृत्त होता है। इसकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति शांति और स्थिरता का एक विशाल आधार है।' मानव मन तमस से सत्व की ओर विकसित होता है। शिक्षा का लक्ष्य किसी भी समय बच्चे की प्रमुख प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इस बदलाव को तेज करना है। यह जानकर शिक्षक सबसे स्वाभाविक तरीके से बच्चे के विकास में मदद कर सकता है और उसकी सभी सीमाओं को पार कर उसकी पूरी क्षमता प्राप्त कर सकता है।

तीसरा सिद्धांत— निकट से दूर तक कार्य करना

शिक्षा का तीसरा सिद्धांत है **'निकट से दूर की ओर, जो है उससे जो होगा उसकी ओर काम करना।'** अतीत, उसकी आनुवंशिकता, उसका परिवेश, उसकी राष्ट्रीयता, उसका देश, वह मिट्टी जिससे वह अपना भरण—पोषण करता है, वह हवा जिसमें वह सांस लेता है, वह दृश्य, ध्वनियाँ, आदतें जिनका वह आदी है। वे उसे कम सशक्त रूप से नहीं बल्कि असंवेदनशील तरीके से ढालते हैं, और फिर हमें वहीं से शुरुआत करनी चाहिए। हमें प्रकृति को उस धरती से जड़ से नहीं लेना चाहिए जिसमें उसे विकसित होना चाहिए या मन को ऐसे जीवन की छवियों और विचारों से नहीं घेरना चाहिए जो उससे अलग है जिसमें उसे शारीरिक रूप से विचरण करना चाहिए। यदि बाहर से कुछ भी लाना हो तो चढ़ाना चाहिए, मन पर थोपना नहीं चाहिए।'

इस सिद्धांत में विचार करने योग्य दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। पहला पहलू एक स्थिर, अपरिवर्तनीय इकाई है जो किसी के नियंत्रण से परे है। यह दूसरा पहलू है जो शिक्षक और छात्र की भूमिकाओं को सामने लाता है। यह सामान्य ज्ञान है कि किसी छात्र की राष्ट्रीयता सामान्यतः अपरिवर्तनीय होती है, उसी प्रकार उसकी आत्मा का अतीत, उसकी आनुवंशिकता और उसकी अंतर्निहित आदतें भी। हालाँकि, वे उसके लिए एक व्यवहार्य शिक्षा प्रणाली को आकार देने में महत्वपूर्ण पहलू हैं। यह सिद्धांत शारीरिक और मानसिक दोनों क्षेत्रों

पर लागू होता है। भौतिक स्तर पर, सिद्धांत का तात्पर्य इंद्रियों से अधिक अमूर्त और उदात्त क्षमताओं तक विकास है। यह वास्तव में सच है कि प्रारंभिक स्तर पर, एक बच्चे की शिक्षा विशुद्ध रूप से शारीरिक स्तर पर शुरू होती है। वह शारीरिक प्रतिक्रियाओं और उत्तेजनाओं के माध्यम से जीवन की मूल बातें और उसके निर्वाह को सीखता है। जैसे—जैसे उसकी शारीरिक शिक्षा आकार लेने लगती है और किसी प्रकार की पूर्णता प्राप्त करने लगती है, उसकी मानसिक और मानसिक शिक्षा समय की आवश्यकता बन जाती है। शैक्षिक मनोवैज्ञानिक आम तौर पर सहमत हैं कि एक छात्र के जीवन के पहले दस साल पूरी तरह से बुनियादी स्तर पर मोटर और संवेदी कौशल विकसित करने में व्यतीत होते हैं। उसकी भावनाओं, पसंद—नापसंद का भी सूक्ष्म विकास होता है। किशोरावस्था में भावनाओं, आवेगों और जुनून की प्रधानता होती है। धीरे—धीरे, जैसे—जैसे शिष्य बढ़ता है, भौतिक—प्राणिक प्रेरणाएँ शांत, सूक्ष्म और उदात्त रुचियों का मार्ग प्रशस्त करती हैं। वह एक निश्चित विश्व दृष्टिकोण विकसित करता है जो उसके पर्यावरण, उसकी आनुवंशिकता, उसके परिवेश और सबसे महत्वपूर्ण, उसकी शिक्षा से निर्धारित होता है। **'निकट से दूर तक'** काम करने का सिद्धांत अनुक्रम की भावना लाता है जिसे इंटीग्रल शिक्षा प्रणाली के किसी भी सफल कार्यान्वयन में पालन करने की आवश्यकता होती है और इस सिद्धांत की वैधता बहुत ही सामान्य शैक्षणिक गतिविधियों से उत्पन्न होती है, जैसे अनुक्रमण कक्षाएं एक दिनचर्या में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों की प्रकृति, शारीरिक शिक्षा, बुनियादी से अधिक उन्नत स्तर तक पाठ्यक्रम का विकास आदि को ध्यान में रखना यह बहुत महत्व का सिद्धांत है और इस उचित अनुक्रम का कार्य एक कार्य है जिसे एक शिक्षक को बिना किसी दोष या गलती के पूरा करना चाहिए। अनुक्रमों में कोई भी अव्यवस्था न केवल छात्र की प्रगति को नुकसान पहुंचाएगी, बल्कि शिक्षा के पिछले स्तरों में जो कुछ भी हासिल किया गया है, उसे नष्ट कर देगी।

चौथा सिद्धांत— शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए

एकात्म शिक्षा का चौथा सिद्धांत यह है कि वह राष्ट्रीय होनी चाहिए। स्पष्ट स्तर पर, शिक्षा की **'राष्ट्रीय'** प्रणाली की अवधारणा श्री अरविंद घोष के सार्वभौमिक व्यक्ति के दृष्टिकोण के विपरीत हो सकती है। लेकिन, सिद्धांत की गहन जांच से यह भ्रांति दूर हो जाती है। समग्र सिस्टम के अनुसार **'राष्ट्रीय'** शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से नहीं है जो बाहरी दुनिया के विकास या उपलब्धियों से अलग हो। इसका तात्पर्य भारतीय दृष्टिकोण से अंतर—राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की जांच करने के लिए एक छात्र की क्षमता को बढ़ावा देना है। भारतीय इतिहास और संस्कृति में इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि हमारा देश दुनिया के उन कुछ देशों में से एक है जहां जीवन जीने का प्राकृतिक तरीका है जो दुनिया भर की विभिन्न संस्कृतियों के लोगों को आत्मसात करता है। जिन विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारे देश पर हमला किया है, वे हमेशा सार्वभौमिक मानवता की दृष्टि के कारण खुद को राष्ट्रीय लोकाचार में विलीन करने में सफल रहे हैं, जिसे हमने अनादि काल से पोषित किया है। इस प्रकार, **'भारतीय'** शिक्षा प्रणाली कभी भी संकीर्ण या विशिष्ट नहीं होगी। सीमा पार दृष्टिकोणों को छोड़कर इसका अस्तित्व कभी नहीं होगा। शिक्षा की एक **'राष्ट्रीय'** प्रणाली विकसित करने की अवधारणा का प्राथमिक उद्देश्य एक ऐसी आत्मा का पोषण और विकास करना है जो सहिष्णुता और सार्वभौमिक मानवता की भारतीय परंपराओं को आत्मसात करेगी। **जुगल किशोर मुखर्जी** ने अपनी पुस्तक **प्रिंसिपल्स एंड गोल्स ऑफ इंटीग्रल**

एजुकेशन में इस सिद्धांत का स्पष्टता के साथ विश्लेषण किया है। उनका कहना है— 'भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा का मतलब एक तरफ अतीत के उन रूपों की ओर रूढ़िवादी प्रतिगमन नहीं है जो कभी हमारी संस्कृति का जीवित ढाँचा थे लेकिन अब मृत या मरती हुई चीजें हैं, न ही किसी विदेशी पैटर्न को अपनाना, जो अन्य के लिए उपयुक्त हो।' देशों में केवल कुछ अंतरों, परिवर्धन, घटाव, विवरण और पाठ्यक्रम के संशोधनों और इसे भारतीय रंग की चमक देने के साथ। सही ढंग से सोची गई भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा वह होगी जो भारत की विकासशील आत्मा के प्रति, उसकी भविष्य की जरूरतों के प्रति, उसके आने वाले आत्म—निर्माण की महानता के प्रति, उसकी शाश्वत आत्मा के प्रति वफादार होगी। इसकी नींव हमारे अपने अस्तित्व, अपने मन और अपनी आत्मा पर रखनी होगी।

पाँचवाँ सिद्धांत— छात्र के नैतिक ताने—बाने को मजबूत करना

पांचवां सिद्धांत ज्ञान की क्षमताओं का निर्माण करना और छात्र के नैतिक ढांचे को मजबूत करना होगा। इस लक्ष्य को दो व्यापक तरीकों से हासिल किया जा सकता है। पहला, बाहर से नैतिक सिद्धांतों का प्रत्यक्ष समावेश होगा। दूसरा, अपने मानस में बदलाव लाकर छात्र की सही और गलत में भेदभाव करने की शक्ति विकसित करना होगा। यह दूसरा तरीका है जिसकी समग्र शिक्षा के अनुसार अधिक वैधता है।

विद्यार्थियों के नैतिक ताने—बाने को मजबूत करने के महत्व को शायद ही नजरअंदाज किया जा सकता है। उसका महत्व काफी हद तक इसलिए है क्योंकि मनुष्य एक स्वतंत्र व्यक्ति है जिसमें वह अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने की शक्ति रखता है। यदि उसके कार्यों को कोई नैतिक समर्थन नहीं है, तो उसने जीवन में जो भी प्रगति की है उसे नष्ट कर सकता है। यह एक सामान्य अनुभव है कि बिना नैतिक आधार वाले कार्य न केवल व्यक्ति को बल्कि पूरे समाज को नुकसान पहुँचाते हैं। इसलिए यह मानव जाति के सामूहिक हित में है कि मनुष्य को नैतिकता में पूरी तरह से शामिल होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, नैतिक शिक्षा आवश्यक है क्योंकि यह विद्यार्थी को अपनी स्वतंत्रता का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करने में सक्षम बनाएगी। वास्तव में, श्री अरविंद घोष के योग के अनुसार एक सुनिश्चित नैतिक आधार पूर्णता की ओर पहला कदम है। श्री अरविंद घोष ने द लाइफ डिवाइन के अध्याय **'मिथ्यात्व और बुराई की उत्पत्ति'** में इस मामले की विस्तार से जांच की है। वह कहते हैं— 'मन या जीवन से कहीं अधिक, जो या तो अच्छे या बुरे की ओर मुड़ सकता है, यह आत्मा—व्यक्तित्व, चैतन्य प्राणी है, जो भेद पर जोर देता है, हालांकि केवल नैतिक अंतर से बड़े अर्थ में। यह हमारे अंदर की आत्मा है जो सदैव सत्य, अच्छाई और सौंदर्य की ओर मुड़ती है, क्योंकि इन्हीं चीजों के द्वारा उसका कद बढता है, बाकी, उनके विपरीत, अनुभव का एक आवश्यक हिस्सा हैं, लेकिन अस्तित्व की आध्यात्मिक वृद्धि में उन्हें आगे बढ़ना होगा।

श्री अरविंद घोष के दावे का सार यह है कि बुराई अधिक से अधिक एक अस्थायी इकाई है जो व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के साथ खुद को शून्य कर देगी, लेकिन फिर भी नैतिक शिक्षा एक आवश्यकता है क्योंकि यह व्यक्ति के मानस से बुराई को बाहर निकलने की प्रक्रिया को तेज कर देगी। यह ध्यान रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि अच्छाई से, श्री अरविंद घोष का तात्पर्य केवल बुराई का गैर—अस्तित्व नहीं है। बुराई का

अस्तित्व न होना केवल एक नकारात्मक इकाई का निषेध है, जो अपने आप में सार्थक आध्यात्मिक प्रगति का संकेत नहीं देता है। वास्तव में, जो व्यक्ति बुरे नहीं हैं उनमें आध्यात्मिक प्रगति बहुत कम हो सकती है, क्योंकि बुराई की अनुपस्थिति के साथ–साथ अच्छाई का विकास भी होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में व्यक्ति में नैतिक शिक्षा सर्वोपरि महत्व रखती है।

अपने निबंध **'द मोरल नेचर'** में, श्री अरविंद घोष कहते हैं कि 'नैतिक प्रशिक्षण का पहला नियम सुझाव देना और आमंत्रित करना है, आदेश देना या थोपना नहीं। सुझाव देने का सबसे अच्छा तरीका व्यक्तिगत उदाहरण, दैनिक बातचीत और दिन–प्रतिदिन पढ़ी जाने वाली किताबें हैं।' वह यह भी दावा करते हैं कि 'गुरु द्वारा अपने ज्ञान और पवित्रता से शिष्य को अंतर्निहित आज्ञाकारिता, पूर्ण प्रशंसा, श्रद्धापूर्ण अनुकरण की आज्ञा देने की पुरानी भारतीय प्रणाली नैतिक अनुशासन का एक बहुत बेहतर तरीका था।' यह समकालीन शिक्षा परिदृश्य में शिक्षक के कार्य को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना देता है। उसे नैतिक उदाहरण से नेतृत्व करना होगा। वह एक विशेष प्रकार की पुस्तकों को भी विशेष महत्व देते हैं। उनका सुझाव है कि किताबों में छोटे छात्रों के लिए अतीत के दिए गए ऊंचे उदाहरणों को नैतिक पाठ के रूप में नहीं, बल्कि सर्वोच्च मानवीय हित की चीजों के रूप में शामिल किया जाना चाहिए और बड़े छात्रों के लिए महान आत्माओं के महान विचार शामिल होने चाहिए। साहित्य के अंश जो उच्चतम भावनाओं को प्रज्वलित करते हैं और उच्चतम आदर्शों और आकांक्षाओं को प्रेरित करते हैं, इतिहास और जीवनी के अभिलेख जो उन महान विचारों, महान भावनाओं और आकांक्षी आदर्शों को जीने का उदाहरण देते हैं।

छठा सिद्धांत– विद्यार्थियों के सौंदर्यात्मक स्वभाव का विकास करना होगा

शिक्षा का छठा सिद्धांत यह है कि विद्यार्थी के नैतिक–सौन्दर्यात्मक स्वभाव का भी विकास करना होगा। यह वह सिद्धांत है जो मानसिक शिक्षा की अवधारणा को सामने लाता है। मानसिक शिक्षा पर एक निबंध में कहा गया है कि मन की सच्ची शिक्षा, जो मनुष्य को उच्च जीवन के लिए तैयार करेगी, के पाँच प्रमुख चरण हैं। आम तौर पर, ये चरण एक के बाद एक आते हैं, लेकिन असाधारण व्यक्तियों में ये वैकल्पिक रूप से या एक साथ भी आ सकते हैं। संक्षेप में पाँच चरण हैं–

- एकाग्रता की शक्ति, ध्यान देने की क्षमता का विकास।
- विस्तार, व्यापकता, जटिलता।
- समृद्धि की क्षमताओं का विकास।
- एक केंद्रीय विचार या उच्च आदर्श या एक अत्यंत चमकदार विचार के आसपास विचारों का संगठन जो जीवन में एक मार्गदर्शक के रूप में काम करेगा।
- विचार नियंत्रण, अवांछनीय विचारों की अस्वीकृति, ताकि अंत में व्यक्ति केवल वही सोच सके जो वह चाहता है।
- मानसिक शांति, पूर्ण शांति और प्रेरणाओं के प्रति अधिक से अधिक ग्रहणशीलता का विकास।

एक छात्र के सौंदर्य संबंधी रुचियों को विकसित करने के लिए, एक शिक्षक को मुख्य रूप से यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके पास पर्याप्त मानसिक प्रशिक्षण हो ताकि सौंदर्य संबंधी इच्छाओं और प्रवृत्तियों द्वारा प्रदान की जाने वाली स्वतंत्रता को सर्वोत्तम संभव तरीके से नियंत्रित किया जा सके ताकि सौंदर्य दिशा में प्रयास सार्थक हो सकें और उद्देश्यपूर्ण मानसिक प्रशिक्षण और अनुशासन के बिना, सौंदर्य संबंधी प्रयास आसानी से खत्म हो सकते हैं और शक्ति और दिशा खो सकते हैं। एक सफल सौंदर्य रिसेप्शन एक बेहद मांग वाली आवश्यकता है। द लाइफ डिवाइन में श्री अरविंद घोष कहते हैं, 'हम कला और कविता द्वारा दर्शाए गए चीजों के सौंदर्यपूर्ण स्वागत में परिवर्तनशील लेकिन सार्वभौमिक आनंद के लिए इस क्षमता को प्राप्त करते हैं, ताकि हम वहां दुख के रस या स्वाद का आनंद ले सकें।' भयानक, यहाँ तक कि भयानक या विकर्षक और इसका कारण यह है कि हम अलग हैं, उदासीन हैं, अपने बारे में या आत्मरक्षा (जुगुप्सा) के बारे में नहीं सोचते हैं, बल्कि केवल चीज और उसके सार के बारे में सोचते हैं। इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि सौंदर्यवाद में सफल होने के लिए सर्वोत्तम मानसिक अनुशासन की आवश्यकता होती है ताकि व्यक्ति सभी रसों में से सर्वोत्तम का आनंद ले सके और साथ ही मन के महत्वपूर्ण सार को भी बरकरार रख सके। विद्यार्थी के मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने के लिए शिक्षक को स्वयं को विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं में प्रशिक्षित करना पड़ता है। उसे मन की कई परतों को समझना होगा. परतें हैं—

- **चित्त—** आमतौर पर स्मृति के भंडार के रूप में जाना जाता है, यह वह आधार है जिस पर मन की अन्य सभी परतें खड़ी होती हैं। यह परत मानसिक चेतना की सामान्य सामग्री है। इसका मुख्य कार्य ऊपर या नीचे से प्राप्त करना है। स्वागत के ऐसे कार्यों में, बुद्धि या प्राणिक इच्छा सक्रिय रूप से सहायता करती है।
- **मानस—** यह मानव मन की दूसरी परत या हमारे पारंपरिक भारतीय मनोविज्ञान की आमतौर पर समझी जाने वाली छठी इंद्रिय है। मानस का कार्य दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श, पांच इंद्रियों में अनुवादित चीजों की छवियों को प्राप्त करना और उन्हें फिर से विचार—संवेदनाओं में अनुवाद करना है। यह अपनी स्वयं की प्रत्यक्ष समझ की छवियों को भी प्राप्त करता है और उन्हें मानसिक छापों में बनाता है।
- **बुद्धि—** तीसरी परत, बुद्धि या बुद्धि विचार का वास्तविक साधन है और जो मशीन के अन्य भागों द्वारा अर्जित ज्ञान को व्यवस्थित और व्यवस्थित करती है। जहां तक समग्र शिक्षा की अवधारणा का सवाल है यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण परत है। अधिकांश मानसिक गतिविधियाँ, जिनके बारे में हम जानते हैं, जैसे कि समझ, रचनात्मकता, निर्णय, कल्पना, स्मृति, अवलोकन, तुलना, वर्गीकरण, कटौती, अनुमान, आदि सभी इसी स्तर से प्राप्त होती हैं। किसी छात्र के सौंदर्य संबंधी पहलू के सफल विकास के लिए उसके मन की इस परत को विशेषज्ञ रूप से संभालने की आवश्यकता होती है और शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। आज यह आम धारणा है कि मानव मन या मानस की कार्यप्रणाली पर पकड़ एक सफल इंटीग्रल शिक्षा शिक्षक के लिए अनिवार्य आवश्यकता है।
- **उच्च संकाय—** चौथी परत, जो अभी तक मनुष्य में विकसित नहीं हुई है, ज्ञान की उच्चतम परतों और प्रतिभाशाली—संप्रभु विवेक, सत्य की सहज धारणा, भाषण की प्रेरणा, रहस्योद्घाटन के लिए ज्ञान की

प्रत्यक्ष दृष्टि से संबंधित है। ऐसी शक्तियां, जाहिर तौर पर, दुर्लभ हैं, हालांकि कुछ के पास ऐसी शक्तियां अचानक आ सकती हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मानवता, सामूहिक रूप से, अभी तक मन के इस स्तर को प्राप्त नहीं कर पाई है। हालाँकि, एक प्रशिक्षक को कुछ विद्यार्थियों को प्राप्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए जो ऐसे उच्च संकायों का उपयोग करने के लिए अधिक उदारतापूर्वक संपन्न हो सकते हैं। यदि सामान्य शिक्षक की समझ अपूर्ण है, तो वह प्रतिभा की उपेक्षा करने या उसे दबाने की पूरी कोशिश करेगा। हालाँकि, एक आदर्श शिक्षक को प्रतिभा की झलक को बढ़ावा देना चाहिए यदि वह किसी छात्र में प्रतिभा का पता लगाता है।

सौंदर्य शिक्षा के सफल प्रचार के लिए कल्पना के कार्य के सक्रिय उपयोग की आवश्यकता होगी। श्री अरविंद घोष, द लाइफ डिवाइन में, कल्पना को **'एक सबसे महत्वपूर्ण और अपरिहार्य साधन'** के रूप में परिभाषित करते हैं। इसे तीन कार्यों में विभाजित किया जा सकता है, मानसिक छवियों का निर्माण, विचारों, छवियों और नकल या मौजूदा विचारों और छवियों के नए संयोजनों को बनाने की शक्ति, चीजों में आत्मा की सराहना, सौंदर्य, आकर्षण, महानता, छिपी हुई विचारोत्तेजकता, भावना और आध्यात्मिक जीवन जो दुनिया में व्याप्त है। यह हर तरह से उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बाहरी चीजों का अवलोकन और तुलना करने वाली क्षमताओं का प्रशिक्षण। कल्पना के तीनों कार्यों को एक शिक्षक द्वारा बढ़ावा दिया जा सकता है यदि वह कल्पना के तीनों कार्यों की प्रकृति के प्रति संवेदनशील है। इसके अलावा, यह महत्वपूर्ण भी है क्योंकि हम अक्सर ऐसे मामलों का सामना करते हैं जहां बेहद प्रतिभाशाली बच्चे उस वातावरण के असहयोग के कारण अपनी प्रतिभा को बर्बाद कर रहे हैं जिसमें उन्होंने शिक्षा प्राप्त की है। शिक्षक को इस संबंध में एक और महत्वपूर्ण कार्य पूरा करना होगा। चूँकि ज्ञान की निरंतर बढ़ती संरचना की नींव को स्थिरता के साथ तभी कायम रखा जा सकता है जब छात्र को ऊर्जा का पर्याप्त स्रोत प्रदान किया जाए— जो मानसिक, बौद्धिक और कल्पनाशील क्षमताओं के सक्रिय उपयोग का बोझ उठाने के लिए पर्याप्त हो, इसलिए शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चे को अनंत ऊर्जा के स्रोत की खोज करने और आवश्यकता पड़ने पर उसके संसाधनों का दोहन करने में मदद करने में सक्षम होना चाहिए।

सातवाँ सिद्धांत— शिक्षा को आध्यात्मिक रूप से सार्थक बनाना

एकात्म शिक्षा का सातवां सिद्धांत यह है कि शिक्षा को व्यवसायवाद, सनसनीखेजवाद, तर्कवाद और राजनीति की सीमाओं से बचाकर आध्यात्मिक रूप से सार्थक बनाना है। आज यह सामान्य ज्ञान है कि हमारी शिक्षा प्रणाली व्यावसायिकता से उत्पन्न होती है, विकसित होती है और समाप्त होती है। यह अनियंत्रित व्यावसायिकता न केवल एक बच्चे की अंतर्निहित और प्राकृतिक प्रवृत्तियों को नष्ट कर देती है, बल्कि अगर वे समाज के आर्थिक पैमाने के वंचित छोर पर होते हैं तो यह अक्सर उन्हें मनोवैज्ञानिक झटका भी देता है। अत्यधिक व्यावसायिकता के परिणामस्वरूप अक्सर प्रतिभा प्रोत्साहन में दुखद उलटफेर होता है और कई बच्चों के शैक्षणिक उद्यम समाप्त हो जाते हैं। इससे समाज को होने वाली हानि से अधिक गंभीर कोई बात नहीं हो सकती।

इसके अलावा, वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने, अपने विशिष्ट व्यावसायिक झुकाव के कारण, शिक्षा के कई पहलुओं को विस्थापित कर दिया है जो अन्यथा पारंपरिक भारतीय शिक्षा का एक अभिन्न अंग थे। संस्कृति, नैतिकता और आध्यात्मिकता से संबंधित पारंपरिक मूल्यों को पीछे धकेल दिया गया है और अधिकांश समकालीन भारतीय शिक्षा में केवल उन्हीं शैक्षणिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाता है जो आर्थिक प्रगति में योगदान करती हैं। इस परेशान करने वाले विकास ने न केवल शिक्षा के अमानवीय पहलू को जन्म दिया है, बल्कि इसने बच्चों को शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रूप से उथल–पुथल वाले करियर का सामना करने के लिए भी प्रेरित किया है। परिणामस्वरूप आध्यात्मिक और मानसिक मनुष्य का प्राकृतिक विकास अवरुद्ध हो गया है और अधिक से अधिक सांसारिक प्रसिद्धि और भौतिक वैभव की अस्वस्थ दौड़ बच्चों को अमानवीय पीड़ा दे रही है। रश्मि सेठी, एक निबंध, **'एजुकेशन– ए फेथफुल ट्रांसक्रिप्शन'** में कहती हैं– 'एकात्मवाद मनुष्य को एक आत्मा, ईश्वरीय (चेतना) का एक अपवर्तित भाग के रूप में देखता है। वह एक शारीरिक, प्राणिक और मानसिक प्राणी है और चेतना के विभिन्न स्तरों पर कार्य करता है। शरीर के रूप में पदार्थ में लिपटा हुआ, वह स्वयं और आत्मा के मिलन की प्रकृति में एक सचेत अभिव्यक्ति है। मानव व्यक्तित्व की कल्पना शारीरिक, प्राणिक, मानसिक जैसे विकासशील घटकों से मिलकर की जाती है।'

मनुष्य के व्यक्तित्व में त्रि–आयामी से चार–आयामी इकाई तक विकसित होने की गुंजाइश है जिसमें प्रत्येक घटक को आत्मा (मानसिक) के नेतृत्व में, दूसरे के माध्यम से आवश्यक रूप से इसकी प्राप्ति की संभावना है। समग्र शिक्षा मानव आत्मा की सभी चार आयामों को एक इकाई में समाहित करने का प्रयास करती है। उदाहरण के लिए, SAICE में प्रचलित समग्र शिक्षा का एक उद्देश्य, व्यावसायिक गतिविधियों को पृष्ठभूमि में धकेलना और बच्चे को आर्थिक समाज के अस्वास्थ्यकर प्रभावों से बचाना है। यह सामान्य ज्ञान है कि व्यवसायवाद समाज में एक शक्तिशाली विघटनकारी कारक के रूप में कार्य करता है, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है।

भविष्य की शिक्षा और, वास्तव में, समग्र शिक्षा को मानवीय मूल्यों को संरक्षित और बढ़ावा देना होगा और यह देखना होगा कि शिक्षा में मानवीय कारक की उपेक्षा न हो। चूंकि आर्थिक आधार लगभग हमेशा अमीर और अमीर की एक द्विआधारी दुनिया बनाता है, इसलिए आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक आर्थिक या व्यावसायिक विचार करना महत्वपूर्ण है। हालाँकि यह एक कठिन काम है, लेकिन अगर ऐसा नहीं किया गया तो एक बच्चे को इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी।

समग्र शिक्षा के सिद्धांत जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसके सिद्धांतों की स्पष्ट रूप से मांग वाली प्रकृति के कारण इसके कार्यान्वयन में तुरंत कठिनाई हो सकती है। हालाँकि, वर्तमान सामाजिक–आर्थिक संदर्भ में, हमारे पास अपनी कक्षाओं में समग्र शिक्षा के सिद्धांतों को अपनाने और अभ्यास करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली न केवल दोषपूर्ण है बल्कि हानिकारक भी है। यह **'मनुष्य–निर्माण'** के साहसिक कार्य के रूप में शिक्षा के मूल उद्देश्य को पूरा नहीं करता है। इंटीग्रल शिक्षा की क्षमता का अंदाजा SAICE पांडिचेरी और भारत और विदेशों में अन्य इंटीग्रल शिक्षा स्कूलों में मिली सफलता से लगाया जा सकता है।

एक समग्र शिक्षा प्रणाली समय की मांग है क्योंकि यह व्यक्तिगत आत्माओं के पुष्पन और विकास के लिए सर्वोत्तम संभव परिस्थितियाँ और वातावरण प्रदान करेगी। यह अंतत: समाज में किसी भी व्यक्ति की भविष्य की भूमिका के लिए सर्वोत्तम संभव विकास साबित होगा। यह उन विद्यार्थियों के मामले में भी सच होगा जो अंतत: दिव्य आत्मा की स्थिति तक आध्यात्मिक रूप से विकसित नहीं हो सकते हैं। ऐसे विद्यार्थियों के लिए, समग्र शिक्षा उन्हें समाज के लिए एक संपत्ति बनाएगी और समाज को सार्वभौमिक मानव के विकास के लिए एक बेहतर स्थान बनाएगी। उन विद्यार्थियों के लिए जो अंतत: उन्नत दिव्य चेतना के ऐसे चरण तक पहुंचेंगे, एक समग्र शिक्षा महत्वपूर्ण महत्व साबित होगी। यह न केवल उन्हें कई कठिन और जटिल प्रयासों से बचाएगा, बल्कि भविष्य के आध्यात्मिक प्रयासों या साधना (केंद्रित आध्यात्मिक प्रयास) के लिए एक मजबूत आधार बनाने में भी मदद करेगा। इस प्रकार समग्र शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को पृथ्वी पर ईश्वर की अभिन्न अभिव्यक्ति प्राप्त करने के लिए तैयार करना होगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रतिपादित सिद्धांत वास्तविक शैक्षिक स्थितियों में मार्गदर्शक के रूप में काम कर सकते हैं। हालाँकि यह आम आरोप रहा है कि कई सिद्धांत वास्तव में कक्षाओं में लागू करने के लिए बहुत अस्पष्ट हैं, इस शोधार्थी के लिए यह एक सामान्य अनुभव रहा है कि ऐसे सिद्धांतों को एस.ए.आई.सी.ई. और इस पर काम करने वाले कुछ अन्य संस्थानों में महत्वपूर्ण सफलता के साथ लागू किया गया है। तर्कसंगत रूप से, कुछ संस्थानों में जो पालन किया जा सकता है, कम से कम सैद्धांतिक रूप से अन्य संस्थानों में भी उसका पालन किया जा सकता है, क्योंकि सिद्धांत भौतिक बुनियादी ढांचे या अन्य महंगी आवश्यकताओं के संदर्भ में बहुत अधिक मांग नहीं करते हैं।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. चौधरी, हरिदास (1960) 'द इंटीग्रल फिलॉसफी ऑफ श्री अरविंद', जॉर्ज एलन एंड अनविन, लंदन।
2. मैत्रा, एस.के. (2006) 'एन इंट्रोडक्शन टू द फिलॉसफी ऑफ श्री अरविंद', श्री अरविंद, आश्रम, पांडिचेरी।
3. मिश्रा, राम शंकर (1960) 'द इंटीग्रल अद्वैतिज्म ऑफ श्री अरविंद', श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी
4. निरोदबारन (1986) 'श्री अरविंद के साथ वार्ता', श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी।
5. पार्थो (1960) 'इंटीग्रल एजुकेशन— ए फाउंडेशन फॉर द फ्यूचर', श्री अरविंद सोसाइटी, पांडिचेरी।
6. रेड्डी, ए मोहंती, एस. (एड) (2005) 'श्री अरविंद के विचार की अनिवार्यता', मानव अध्ययन संस्थान, हैदराबाद।
7. सेंट—हिलैरे, पी.बी. (2006) 'शिक्षा और मानव जीवन का उद्देश्य', श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी।
8. श्री अरविंद (2006) 'श्री अरविंद के संपूर्ण कार्य' श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी।
9. श्री अरविंद (2007) 'पृथ्वी पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति' श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी।
10. श्री अरविंद (1956) 'राष्ट्रीय शिक्षा पर एक प्रस्तावना' श्री अरविंद आश्रम पांडिचेरी।